卐 श्रीजानकीवल्लभो विजयतेतराम् 卐

श्रीमद्भगवद्रामानन्दाचार्यकृतानन्दभाष्यभूषिता

काठकोपनिषद्

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

卐 परब्रह्मणे श्रीरामाय नमः 卐

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

वह भगवान् परमपुरुष श्रीरामजी हम शिष्य तथा आचार्य का साथ साथ रक्षण करें । हम शिष्य तथा आचार्य का साथ साथ पालन करें । विद्याध्ययन तथा अध्यापन जनितवीर्य बल पराक्रम दोनों को देवें । हम से अधीत यह विद्या तेजस्वी हो हम शिष्य तथा आचार्य में परस्पर विद्वेष न हो । तापत्रय की शान्ति हो ।

कपिरपि यस्य कृपातः प्रातः स्मरणीयतां यातः ।
नातः परमवलम्बे ध्यातः सद्यः श्रिये सोऽस्तु ॥१॥

जिस भगवान् श्रीसाकेताधिपति की कृपा से कपि बन्दर भी प्रातः स्मरणीयता को प्राप्तकर गये । एतादृश सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ । जिस रमापति भगवान् श्रीरामजी के ध्यान करने से सद्यः लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥१॥

आराध्यं ब्रह्मरुद्रादेर्जगद्धेतुं च मुक्तिदम् ।
दिव्यदेहं गुणाम्भोधिं रामं ब्रह्म समाश्रये ॥२॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्मा और रुद्र से भी आराध्य हैं तथा स्थावर जङ्गमात्मक सकल जगत् के उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय के कारण हैं **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्य भिसंविशन्ति'** जिस सर्वशक्ति समन्वित भगवान् से ये आकाशादिक सर्वभूत उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न हो करके स्थिति काल में उसमें स्थित रहते हैं और प्रतिसर्ग के समय में सर्ग विपरीत क्रम से प्रलीयमान हो जाते हैं वह ब्रह्म है इसप्रकार से श्रुति कहती है तथा जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नित्य निरतिशय सुख प्राप्तिरूप मोक्ष के देनेवाले हैं **'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इत्यादिश्रुतेः** । तथा जो भगवान्

दिव्य लोकोत्तर अप्राकृतिक विग्रहवान् हैं । तथा हेय प्रत्यनीक अनन्त कल्याण गुण का जो समुद्र है एतादृश गुण तथा स्वरूप से सर्वव्यापक भगवान् श्रीराम साकेताधिपति का आश्रय लेता हूँ, अर्थात् भगवान् श्रीसाकेताधिपतिजी को सर्वात्मना मैं प्रणाम करता हूँ, यदीय पदनति सर्व उन्नति का निदान है ॥२॥

सूत्रवृत्तिकृतौ नत्वा व्यासबोधायनौ मुनी ।
श्रीमन्तं राघवानन्दाचार्यं गुरुं नमाम्यहम् ॥३॥

ब्रह्मसूत्रकार भगवान् व्यास सत्यवतीसुत को तथा उक्त सूत्रों के वृत्तिकार श्रद्धेय महर्षि श्रीबोधायनाचार्यजी को नमस्कार करके श्रीमान् राघवानन्दाचार्यजी गुरु महाराज को सादर दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥३॥

कुर्वे गुरुं नमस्कृत्य ज्ञानभक्तिदयानिधिम् ।
कठोपनिषदश्चात्र भाष्यमानन्दसंज्ञकम् ॥४॥

ज्ञान भक्ति और दया के समुद्र जो गुरु महाराज जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी हैं उनको दण्डवत प्रणाम करके अब मैं यहां कठोपनिषद् के आनन्द संज्ञक (नामक) भाष्य को बनाता हूँ ॥४॥

सर्वेश्वरस्य परमपुरुषस्य उपेयस्य, तदुपेतुर्मुक्तजीवस्य परमपुरुषोपासनरूपस्य उपायस्य च स्वरूपमुपदिदिक्षुराचार्यः सुखावगमाय गुरुशिष्यसम्वादगर्भि

तामाख्यायिकामुपक्रामति-

मुमुक्षु द्वारा प्राप्य सर्वेश्वर परमपुरुष श्रीरामजी के प्रापक जो मुक्त जीव हैं उनका तथा परमपुरुष के उपासना रूप उपाय का जो स्वरूप है उसके उपदेश की इच्छा से आचार्यजी सुखावबोध के लिये गुरुशिष्य की सम्वाद घटित आख्यायिका का उपक्रम करते हैं-

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥१॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

卐 प्रणीता लघुदीपिका 卐

यह सर्वप्रसिद्ध है कि यज्ञ फल की कामना वाले बहुत अन्नदान के कारण प्रसिद्ध वाजस्रवा के पुत्र महर्षि उद्दालक ने सर्ववेदस-यानी विश्वजित् नामक यज्ञ करके उसमें सर्वश्च ब्राह्मणों को दान में दे दिया। महर्षि उद्दालक का नचिकेता नामवाला प्रासिद्ध पुत्र था ॥१॥

"अत्र ह वै इति निपातद्वयं भूतपूर्वार्थस्मृत्यर्थं", तेन आख्यायिकागतोऽर्थः न कल्पितः, किन्तु वस्तुभूत इति द्योत्यते । उशन् कामयमानः । फलमिति कर्माध्याहार्यम्-वशकान्तौ इति धातोः शत्रन्तस्य रूपम् । वाजश्रवसः, वाजेन अन्नेन दानादिकर्मणा श्रवः कीर्तिर्यस्य स वाजश्रवाः, रूढिर्वा वाजश्रवाः इति,

तस्यापत्यं पुमान् वाजश्रवसः, वाजश्रवस इत्येव वा रूढं नाम । एतदभिधानः कश्चित् ऋषिः सर्वस्वदक्षिणं विश्वजित् नामकं यागं कृतवान् तत्र नियुक्तेभ्यो याज्ञिकेभ्यः यज्ञसभायामुपस्थितेभ्योऽन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च सर्ववेदसं सर्वस्वं ददौ दक्षिणारूपेण दत्तवान्। तस्य यजमानस्य वाजश्रवसस्य ऋषेः नचिकेता इति प्रसिद्धनामा पुत्रः आस बभूव । छन्दस्युभयथेति सूत्रेण अस्तेः पाक्षिको थेभूभावो न ॥१॥

यहां '**ह**' तथा '**वै**' ये जो दोनों निपात हैं भूतपूर्व अर्थ का स्मारक हैं । इसलिये आख्यायिका में प्रतिपादित जो अर्थ है वह कल्पित नहीं है किन्तु वस्तुभूत यथार्थ है इस वात का द्योतन होता है । उशन् इच्छा करते हुए अर्थात् यज्ञ के फल की इच्छा से । इसप्रकार से फलम् एतादृश कर्म का अध्याहार करना चाहिये । इच्छार्थक वश कान्तौ धातु से शतृ प्रत्यय करके उशन् इसकी निष्पत्ति होती है उसका अर्थ है फल विषयक इच्छावान्। '**वाजश्रवसः**' इति । वाज नाम है अन्न का, तादृश अन्न का जो दान तन्मूलक श्रव कीर्तिलोक में ख्याति है जिसे उसका नाम होता है वाजश्रवा । अथवा वाजश्रवा यह रूढी नाम है, उसका जो अपत्य पुरुष उसे कहते हैं वाजश्रवस । अथवा वाजश्रवस यह रूढ नाम

है। एतादृश नाम वाले कोई ऋषि सर्वस्व दक्षिणा होती है जिस यज्ञ में अर्थात् विश्वजित नामक यज्ञ किया । तत्र उस यज्ञ में ऋत्विक् रूपसे नियुक्त याज्ञिक को यज्ञमंडप पर उपस्थित अथवा अनुपस्थित अन्य ब्राह्मणों को भी सर्ववेदस अर्थात् सर्वस्व दक्षिणा रूपमें दिया । यजमान उस वाजश्रवस ऋषि का नचिकेता है प्रसिद्ध नाम जिसका एता दृश पुत्र था । 'छन्दसि उभयथा' इस सूत्र से विकल्प से भी अस् धातु को भू आदेश नहीं होता है ॥१॥

तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥२॥

ब्राह्मणो को दक्षिणा देने हेतु जव गायें ले आई जा रही थी तव कुमारावस्था में होने पर भी उस नचिकेता के हृदय में अपने पिता के विषय में विशेष श्रद्धा प्रवेश करगई एवं वह मन में अनेक प्रकार से विचारने लगा ॥२॥

तम्" नचिकेतसं कुमारं प्रथमवयस्कं बालमेवं सन्तम् दक्षिणासु ऋत्विग्भ्योऽपरेभ्यश्च दक्षिणारूपासु गोषु नीयमानासु अस्य कृते एतावत्यो गावः दक्षिणेत्येवं विभज्य दीयमानासु पितुः फलैषिणः कामः नैतासां दानेन सिद्ध्येत् इति महानेनापि स सिद्ध्यतु इत्येवं हितकामनाप्रयुक्ता श्रद्धा आस्तिक्यबुद्धिः आवि

वेश प्रविष्टा, ततो जातश्रद्धः स नचिकेता अमन्यत, मननं कृतवान्, विचारितवानित्यर्थः । अत्रदक्षिणासु इति बहुवचनमनुपपन्नम् आनतिकरद्रव्यरूपायाः दक्षिणायाः एकत्रक्रतौ एकस्या एव भावात्-एकवचनान्ततााया एवौचित्यात्-इति तु न शंक्यम् ऋत्वपेक्षया दक्षिणाया एकत्वेऽपि ऋत्विक् सदस्यादिदक्षिणोद्देश्य भेदात् दक्षिणाभेदसंभवात् तस्यैव चात्र विवक्षितत्वात् बहुवचनोपपत्तेः ॥२॥

उस नचिकेता कुमार को अर्थात् प्रथम वयसस्थित बालक को ही दक्षिणा में ऋत्विक् के लिये अथवा तद्भिन्न ब्राह्मणों की दक्षिणा के लिये नीयमान गायों में अर्थात् अमुक ऋत्विक् के लिये अमुक संख्याक गाय दक्षिणा है इसप्रकार से विभागपूर्वक दीयमान में, याग फल को चाहने वाले मेरे पिता को एतादृश निकम्मी गायों को दक्षिणा रूपसे देने पर फल सिद्धि नहीं होगी अतः मेरा दान-कर देने पर भी पिता को फल प्राप्त हो इसप्रकार से हित कामना प्रयुक्त श्रद्धा आस्तिक्य बुद्धि उसमें प्रविष्ट हुई । तदनन्तर श्रद्धाशील उस नचिकेता ने अपने मन में माना मनन किया अर्थात् विचार किया । यहां '**दक्षिणासु नीयमानासु**' में बहु वचन प्रयोग तो उचित नहीं है क्योंकि एक यज्ञ में तो एक ही दक्षिणा

होती है अतः एक वचन प्रयोग ही उचित है बहुत्व प्रयोग अनुपपन्न है। ऐसा पूर्वपक्ष ठीक नहीं है क्योंकि एक क्रतु में एक दक्षिणा होने पर भी ऋत्विक् सदस्य आचार्य ब्रह्मादिक दक्षिणाभागी व्यक्तियों के विभिन्न होने से दक्षिणा भी विभिन्न होती है इस अभिप्राय से बहु वचन का प्रयोग किया गया है अतः कोई अनुपपत्ति नहीं होती है ॥२॥

स किममन्यतेत्याकाङ्क्षायामाह-

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः। अनन्दानाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥३॥

जिस गाय ने अन्तिम वार पानी पी लिया है जिसने अन्तिम वार घास खा लिया है एवं जिसे अन्तिम वार दुह लिया है और जिनके इन्द्रियां भी नष्ट हो चुकी है ऐसी जीर्ण अवस्था वाली गौ दान करने वाला यजमान उस शास्त्र प्रसिद्ध अनन्दा नामक नरकलोक में जाता है ॥३॥

पीतमुदकं याभिस्ता पीतोदकाः जग्धं तृणं याभिस्ताः जग्धतृणाः, दुग्धो दोहः क्षीररूपः यासां ताः दुग्धदोहाः, दानात् पूर्वकालपर्यन्तं यावत् पानीयं पीतम् तावत्पीतमेव दानानन्तरं तु पानीयमपि पातुमसमर्थाः, यावत् तृणं दानपूर्वकालो भक्षितं ततः परम् तृणमप्यत्तुमसमर्थाः, क्षीराख्यो दोहश्च यासां यो दुग्धः

नातः परं यासां दोहः शक्यः दोग्धुम् दुग्धदानासमर्थाश्चेत्यर्थः । निर्गतं प्रजननसामर्थ्यहीनं जातमिन्द्रियं जननेन्द्रियं यासां ताः निरिन्द्रियाः वत्सोत्पादनासमर्थाः, एतेन पायोरपि शक्तिहीनत्वं बोध्यतेऽतः शक्तिरहितपायुक्तया द्रवीभूतसकृद्दानेऽपि लेपनादियोग्यगोमयादानाशक्ततयानिष्फलत्वं प्रदर्शितम् । एवं भूताः या गावः ताः ददत् ऋत्विग्भ्यो दक्षिणारूपतया ददत् प्रयच्छन् यजमानः ते प्रसिद्धाः अनन्दानाम लोकाः, नन्दयन्तीति नन्दाः न नन्दाः अनन्दाः असुखकराः लोकाः शास्त्रविदिताः सन्ति तान् स दक्षिणाबुद्ध्यै तादृशगो प्रदाता यजमानः गच्छति इति मननं कृतवान् इत्यर्थः ।।३।।

'पीतोदका' इत्यादि । जिसने जल को पी लिया है उसे पीतोदका कहते हैं भक्षण कर लिया है तृण घास को जिसने उसे जग्धतृणा कहते हैं और दूह लिया गया है दुग्धरूप दोह जिसका उसे दुग्ध दोहा कहते हैं । अर्थात् यज्ञ में दान देने के पूर्व में ही पानी को पी लिया है अब दानोत्तर काल में जल पीने में भी समर्थ नहीं है । तथा दान देने से पहले (पूर्वकाल में ही) घास वगैरह भक्षण कर लिया है दानोत्तर काल में तो घास खाने में भी असमर्थ है । दान के पहले जो दूध दूह

लिया गया वह दूह लिया गया। इसके वाद दूध दूहना अशक्य है। अर्थात् दुग्ध देने में सर्वथा अशक्त है। **'निरिन्द्रिया'** इन्द्रियरहित है अर्थात् निर्गत है प्रजनन सामर्थ्यहीन है जननेन्द्रिय जिसका एतादृश गाय को निरिन्द्रिय कहते हैं। वत्स के उत्पादन करने का जो सामर्थ्य है उससे सर्वथा रहित थी। इससे पायु इन्द्रिय सामर्थ्य राहित्य का भी सूचन होता है अतः गोमयादि के देने का सामर्थ्य रहित होने से सर्वथा निष्फलत्व बत लाया गया। एतादृश जो गाय उसे दक्षिणा रूपसे ऋत्विक् को देनेवाला यजमान अनन्दा नामक लोक को प्राप्त करता है। आनन्दित करे जो उसे नन्दालोक कहते हैं और जो सुख को देनेवाला न हो उसे अनन्दा लोक कहते हैं एतादृश शास्त्र में बतलाया गया जो लोक है तादृश लोक को एतादृश गाय को दक्षिणा रूपमें ऋत्विक् को जो यजमान देता है वह अनन्दा नामक लोक को प्राप्त करता है। इसप्रकार से नचिकेता ने विचार किया ॥३॥

सहोवाच पितरं तात कस्मै मां दास्यसीति द्वि तीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ।४।

तव उस नचिकेता ने पिताजी के पास जाकर निवेदन किया मेरे अतिप्रिय पिताजी ? आप मुझे किस ब्राह्मण को देंगे इसीप्रकार दो

वार तीन वार निवेदन करने पर क्रोधित पिता ने कहा तुझे मृत्यु-यमराज को देता हूँ ॥४॥

स आस्तिक्यबुद्धियुक्तो नचिकेताः पूर्वोक्तविशेषणशिष्टगोदक्षिणया क्रत्वसाङ्गतां निन्दितलोकप्राप्तिरूपमनिष्टञ्च मन्यमानः आत्मप्रदानेनापि-पितुरिष्टसिद्धिरनिष्टनिवृत्तिश्च पुत्रेण मया करणीयैवेति निश्चित्य पितरम् जनकं वाजश्रवसम् उवाच उपगम्य प्रोक्तवान् हे तात पितः कस्मै ऋत्विग् विशेषाय दक्षिणारूपेण मां पुत्रं पुन्नामनरकात्त्राणकरं दास्यसि प्रयच्छसीति, एवमुक्तेन पित्रा बालस्वभावादयमेवं वक्तीति समुपेक्ष्यमाणोऽपि स नचिकेताः द्वितीयं द्वितीयवारं तृतीयं तृतीयवारञ्च यदा कस्मै मां दास्यति कस्मै मां दास्यतीत्युवाच तदा नायं बालस्वभावात् वक्ति, किन्तु बुद्धिपूर्वकमेव वक्तीति ज्ञात्वा निर्वेदमापन्नः क्रुद्धो वाजश्रवसः पिता मृत्यवे यमाय त्वा नचिकेतसं ददामि प्रयच्छामीति तं कुमारं नचिकेतसम् उवाच उक्तवान् हेति निश्चये ॥४॥

'**सहोवाचेत्यादि**' वह आस्तिक्य बुद्धि से युक्त नचिकेता पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट गौओं की दक्षिणा से क्रतु याग की असांगता तथा निन्दित लोक प्राप्ति लक्षण अनिष्ट फल का विचार करता हुआ स्वकीय आत्म प्रदान

से भी पिता की इष्ट सिद्धि और अनिष्ट की निवृत्ति पुत्र से अवश्य करणीय है ऐसा अपने मन में निश्चय करके पिता वाजश्रवस् के समीप जाकर नचिकेता बोला । हे तात पिताजी ? अन्य ऋत्विक् को तो गो दक्षिणा देते हैं और किस ऋत्विक् विशेष को पुंनाम नरक से त्राण करनेवाले मुझ पुत्र को दक्षिणा रूपमें देते हैं । इसप्रकार से जब नचिकेता ने कहा तब यह बाल स्वभाव से ऐसा बोलता है इसप्रकार से पिता से उपेक्षा करने पर भी उस नचिकेता ने दो वार तीन वार कहा मुझे किसे देते हैं मुझे किसे देते हैं इसप्रकार से कहा तब पिता ने समझा कि यह बालस्वभाव से नहीं बोलता है किन्तु बुद्धिपूर्वक बोलता है हठाग्रह कर रहा है यह समझ करके असा मञ्जस्य को प्राप्त करता हुआ अतिक्रुद्ध पिता वाजश्रवस ने अपने पुत्र नचिकेता को कहा कि मृत्यु के लिये तुम को देता हूँ, इसप्रकार से वह वाजश्रवस बोला । यहां 'ह' यह निपात निश्चयार्थक है ।।४।।

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किं स्विद् यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति।।

पिताजी की वाणी सुन नचिकेता विचारने लगा- मैं यमसदन जानेवाले बहुतों के प्रथम चलता हूँ अथवा बहुतों के मध्य में चलता हूँ पर आज यमराज मेरे से क्या करेगा ? यमराज का करने योग्य

क्या कर्तव्य है जो ब्राह्मणों के समान मुझे दे रहे हैं ॥५॥

पित्रा कोपाविष्टतया मृत्यवे त्वा ददामीत्युक्तोऽपि नचिकेताः भयशोकादिरहितः सन् पितरमुक्तवान्-बहूनां यमस्य पार्श्वे गन्तॄणां जनानां मध्ये प्रथमः सर्वतोऽग्रे एमि गच्छामि अहमिति शेषः । अथवा बहूनां गन्तॄणां मध्ये मध्यमः सर्वतोऽग्रे गन्तुरनुयायी भूत्वा एमि गच्छामि, भयाद्यावि‌ष्टतया बहूनां पश्चात् गच्छामि अर्थात् तवाज्ञया यमगृहगमनेऽपि न मे भयम् न वा कोऽपि विचार इति तवाज्ञां पालयाम्येव परन्तु मम तत्र गमनेऽपि अद्य मया प्राप्तेनापि यत् कर्तव्यं प्रयोजनं स करिष्यति तत् यमस्य कर्तव्यं किंस्वित् किमस्ति यदि मया किमपि यमस्य कार्यं सेत्स्यति तदा तु याज्ञिकेभ्य इव यमायापि मम दानं ते सफलं संभवि, परन्तु नैतत् पूर्णकामत्वात् यमस्य. बालस्वरूपेण मयाऽकिञ्चित्करेण किं तस्य । अतः प्रयोजनमनालोच्यैव क्रोधावेशात् मृत्यवेऽहं भवता दत्त इति अनुशोचामि ॥५॥

'बहूनामित्यादि' क्रोधाविष्ट पिता से मैं तुमको मृत्यु को देता हूँ, इसप्रकार पिता से कहने पर भी भयशोकादि से रहित नचिकेता ने अपने पिता से कहा हे पितः ? यमराज के पास जानेवाले अनेक व्यक्तियों के मध्य में

मैं सब से आगे जाता हूँ। अथवा अनेक जानेवालों के मध्य में मैं मध्यम हूँ, अर्थात् सबसे आगे चलनेवालों का अनुयायी हो करके मैं जाता हूँ। यमादि से युक्त होने के कारण अनेक व्यक्ति के पीछे जाता हूँ, अर्थात् आपकी आज्ञा से यमराज के घर में जाने में भी मुझे कोई भय नहीं है नवा कोई विचार है इसलिये आपकी आज्ञा का पालन करुँगा ही। परन्तु मेरे उस यमसदन में जाने पर भी जो कर्तव्य है वह मैं यम का कर्तव्य करुँगा। यम का वह कर्तव्य क्या है ? यदि मुझ से यम का कुछ कार्य सिद्ध होगा तब तो याज्ञिक की तरह यम के लिये भी मेरा दान आपका सफल होगा। परन्तु यह तो हो नहीं सकता है क्योंकि यमराज तो एक प्रकार से पूर्णकामकल्प हैं। अकिंचित्कर बालस्वरूप मुझ से यम को क्या प्रयोजन होगा अतः प्रयोजन का विचार किये बिना क्रोधावेश में आकर के मृत्यु के लिये आपने मुझे दे दिया। यह मैं विचार करता हूँ, सोचता हूँ ॥५॥

एवं भयक्रोधादिरहितं सौम्यं पुत्रस्य वचः श्रुत्वा पिता सत्यं क्रोधावेशादेव मयैवमुक्तम् नेदृशो गुणी पुत्रः मृत्यवे दातुमुचित इति पश्चात्तापं कुर्वाणं पितरं दृष्ट्वा कदाचिदयं पश्चात्तापयुक्तः यदि यमगृहगमनं मम निरुन्ध्यात् तदा प्रतिज्ञाऽपरिपालनपरिणामभूतमनिष्टं

नरकादिरूपं पुनरस्योपतिष्ठेत् तन्न भवतु इति प्रतिज्ञा पालनाय पितरमुत्साहयति-नचिकेताः अनुपश्येति-

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः

चिन्ता में पिता को देख नचिकेता ने पिता से कहा पिताजी ? आपके पूर्वज जैसे आचरण को निभाते आये हैं उस पर ध्यान दें एवं इस समय सत्पुरुष जो सदाचरण कर रहे हैं उस ओर भी पूर्ण ध्यान दें। यह मनुष्य धान के माफक शीघ्र ही पक जाता है यानी मर जाता है तथा धान आदि के समान ही पुनः सब जगह उत्पन्न होता है ॥६॥

हे पितः पूर्वे पूर्वकालीनाः पितामहादयः यथा येन प्रकारेण मृषावचनं विनैव सत्यवचने प्रतिज्ञातपरिपालने च स्थिताः तथा अनुपश्य क्रमेण आलोचय तदनुसारेण त्वमपि वर्तस्व, अपरे अर्वाचीनाः सज्जना अपि स्वधर्मे सत्यवचनादौ स्थिताः यथा सन्ति तथा प्रतिपश्य विचारय विचार्य पूर्वापरसत्पुरुषवृत्तान्तं त्वमपि तथाऽऽचर यमगेहप्रेषणान् मां नावरुन्धत्स्व, यतः मर्त्यः मनुष्यः सस्यमिव धान्यमिव पच्यते स्वल्पेनैव समयेन जीर्णो भवति, म्रियते च मृत्त्वा च पुनः सस्यमिव आजायते समन्तादुत्पद्यते अतोऽनित्येऽत्र जीवलोके स्वल्पकालीनसुखाय न मृषाकरणीयम् प्रतिज्ञातं सत्यं कुरु मृत्युगृहाय मां प्रेषय, द्रुत-

मिति तात्पर्यम् ॥६॥

एतादृश भय क्रोधादि रहित सौम्य पुत्र के वचन को सुन करके पिता ने कहा कि-हाँ, मैंने क्रोधावेश में ही ऐसा कहा है। एतादृश गुणवान् पुत्र को मृत्यु के लिये देना उचित नहीं है। इसप्रकार पश्चात्ताप करते हुए पिता को देख करके कदाचित् यह मेरे पिता पश्चात्ताप युक्त हो करके मेरा यमसदन में गमन का निरोध करदेंगे तब प्रतिज्ञा पालन नहीं करने के परिणामरूप अनिष्ट नरकादि प्राप्ति इनको होगी- ऐसा न हो इसप्रकार प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये पिता को उत्साहित करते हुए नचिकेता कहता है-**'अनुपश्य'** इत्यादि से। हे पिताजी ? पूर्वकालिक जो पितामह प्रपितामहादिक हो गये हैं वे लोग जिसप्रकार से मिथ्या व्यवहार के बिना सत्यवचन प्रतिज्ञा परिपालन करने में तत्पर रहे उसीप्रकार आप भी अपने विचार को रखिये। एवं अर्वाचीन सज्जन पुरुष स्वधर्म सत्य वचनादिक में व्यवस्थित हैं उसे देखिये विचारिये। पूर्वापर सत्पुरुष वृत्तान्त का आप भी आचरण करें और यम गृह में जाने का निषेध न करें। क्योंकि यह मनुष्य धान्यादि सस्य के समान स्वल्पकाल में ही जीर्ण होता है तथा मर जाता है और मर करके पुनः धान्यादि सस्य के समान पुनः समुत्पन्न होता है।

इसलिये अनित्य इस जीवलोक में स्वल्प कालिक सुख के लिये मृषावादन नहीं करना चाहिये। प्रतिज्ञा को आप सत्य करें, मृत्युगृह के लिये मुझे भेजिये अतिशीघ्र यह तात्पर्य है ॥६॥

एवं प्रेरितेन पित्रा यमसदनाय प्रेषितः नचिकेताः मृत्यौ ब्रह्मसदनं प्रति गतें सति यमभवनं जगाम। तत्र चाभुञ्जान एव किमपि तिस्रो रात्रीः वासेन व्यगमयत् प्रोष्य च स्वभवनमागतं वृद्धाः द्वारपाला ऊचुः-

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ७

नचिकेता के यमधाम पहूँचने पर यमपरिकरों ने यम से कहा-हे वैवस्वत यम ? स्वयं अग्नि ही ब्राह्मण के रूपमें अतिथि बनकर लोगों के घरों में आते हैं अतः आये अतिथि की सेवापरायण जन पाद्य अर्घ्य आदि से शान्ति यानी सेवा करते हैं अतः आप भी नचिकेता की सेवा हेतु जल आदि ले आवें ॥७॥

ब्राह्मणो विप्रः अतिथिरभ्यागतः सन् वैश्वानरः साक्षात् वह्निरेव गृहान् प्रविशति, आगच्छति अतः तत्कृतदाहोपशमाय साधवः तस्यातिथिरूपस्याग्नेः एतां पाद्यादिदानरूपां शान्तिं कुर्वन्ति समाचरन्ति। अन्यथा प्रत्यवायापातात्। अतः हे वैवस्वत विवस्वतो रवेर पत्य यम उदकम् पाद्यार्थं जलम् उपलक्षणमिदमासना

देरपि हर आनय नचिकेतसे इत्यर्थः ॥७॥

इसप्रकार पिता से प्रेषित नचिकेता ने मृत्युभवन को प्राप्त किया । वहां यमराज उस समय में ब्रह्मलोक गये थे । अतः नचिकेता ने तीन अहोरात्र भोजन किये बिना ही यमराज के गृह में निवास किया । जब ब्रह्मलोक से यमराज लौटकर आये तब यमराज के सेवकों ने नचिकेता का आगमन वृत्तान्त निवेदित करके कहा- **'वैश्वानरः'** इत्यादि से । ब्राह्मण जाति से विप्र अतिथि अभ्यागत हो करके वैश्वानर साक्षात् वह्निरूप हो करके घर में प्रविष्ट होता है अर्थात् आता है अतः अग्नि स्वरूपातिथि ब्राह्मणकृत दाह के उपशमन करने के लिये यह अर्घ्यपाद्यादि दान लक्षण शान्ति सज्जन लोग करते हैं । अन्यथा अतिथि का स्वागत न करने से प्रत्यवाय होता है । अतः हे वैवस्वत सूर्यपुत्र यमराज ? उदक अर्घ्यपाद्य के लिये जल यह जल उपलक्षण है अर्थात् जल आसनादिक नचिकेता के स्वागत करने के लिये लाइये । अर्थात् हे यम ? नचिकेता के स्वागत करने के लिये जलादिक लेकर चलिये उस ब्राह्मण का स्वागत कीजिये । अन्यथा वह्निरूप वह ब्राह्मण गृहादि परिवार को दग्ध कर देगा । इसप्रकार यमराज के अनुयायी हितैषियों ने कहा ॥७॥

पादोदकाद्यनाहरणे कः प्रत्यवाय इत्याकांक्षायां प्रत्यवायं द्वारपालाः बोधयन्ति वैवस्वताय-आशाप्रतीक्ष इति-

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान् । एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥८॥

जिस अल्प बुद्धि वाले पुरुष के घर में अतिथि के रूपमें आया ब्राह्मण भोजन के बिना ही वास करता है तो अतिथि सेवा न करने वाले के आशा तथा प्रतीक्षा सत्संगति का फल तथा मधुर वाणी और इष्टापूर्ते-याग आदि अच्छे कर्म तथा भगवत् मन्दिर बनाने आदि का फल एवं सभी पुत्र तथा पशु प्रभृति को अभ्यागत के अनशन रूप अपराध नाश करता है ॥८॥

आशा च प्रतीक्षा च आशाप्रतीक्षे स्वेष्टभाविवस्तुप्राप्तीच्छा आशा, स्वेष्टवर्तमानवस्तुप्राप्तीच्छा प्रतीक्षा । संगतम् सत्पुरुषसंगत्तिम्, तज्जन्यं फलं वा ! सूनृताम् प्रियां वाचम्, तस्या निमित्तं वा यतो प्रियवाक् प्राप्यते । इष्टापूर्ते इष्टञ्च पूर्तं च इष्टापूर्ते, पृषोदरादित्वात् इष्टशब्दस्य समासे दीर्घत्वम् । इष्टं यागादि तज्जन्यं फलं वा पूर्त्तं खातम् वापीकूपतडागादि, तज्जन्यं फलं वा । पुत्रान् पशूँश्च सर्वान् एतत् अतिथिरूपब्राह्मणस्य अनशनं तज्जन्यं पापं वा कर्तृ वृङ्क्ते

अपवर्जयति विनाशयति, कस्येत्याकाङ्क्षायामाहुः यस्य अल्पमेधसः अल्पप्रज्ञस्य पुरुषस्य गृहे अनश्नन् अभुंजानो ब्राह्मणो वसति तस्येत्यर्थः । अतः कस्यामप्यवस्थायां ब्राह्मणोऽतिथिर्नोपेक्ष्यः, किन्तु सत्करणीय एव । वैवस्वत त्वं तु स्वस्थावस्थ एवेति ब्राह्मणायास्मै पाद्यादिकं शीघ्रमुपनयेति भावः ॥८॥

अतिथि के स्वागत करने के लिये यदि जलादि का आहरण न करे तो क्या दोष होगा इस आकांक्षा में वैवस्वत के अनुयायी लोग वैवस्वत को समझाते हैं- **'आशाप्रतीक्षे'** इत्यादि से । आशा स्वकीय भावी इष्ट वस्तु विषयक जो इच्छा उसे आशा कहते हैं तथा वर्तमान कालिक स्वकीय इष्ट वस्तु विषयक जो इच्छा उसे प्रतीक्षा कहते हैं । सत्पुरुष का जो संगम अथवा तादृश संगम जनित जो फल विशेष उसे संगत कहते हैं। प्रिय वाणी को सुनृत कहते हैं अथवा प्रिय वाणी का जो निमित्तकारण जिससे प्रियवाणी की प्राप्ति होती है। इष्ट तथा पूर्त, इष्टापूर्त में इष्ट शब्द का पूर्त शब्द के साथ समास होने पर पृषोदरादित्वात् इष्ट शब्द को दीर्घ होता है । इष्ट शब्द का अर्थ होता है अग्निहोत्रादिक याग अथवा याग जनित फल विशेष, पूर्त शब्द का अर्थ है वापी कूप तडाग आरामादिक अथवा तज्जनित फल

विशेष। पुत्र और पशु गवादिक इन सब वस्तुओं को अतिथिरूप ब्राह्मण का अनशन अथवा अनशन जनित पाप विनष्ट कर देता है। किसके पशु पुत्रादिक को विनष्ट करता है इस आकांक्षा में कहते हैं-'**पुरुषस्याल्प मेधस**' इत्यादि। जिस अल्प मेधस अल्प प्रज्ञावान् व्यक्ति के घर में अनशन भोजन नहीं करता हुआ ब्राह्मण निवास करता है उस गृहमेधी का पुत्रवित्तादि सबका नाश हो जाता है। इसलिये किसी भी अवस्था में अतिथि ब्राह्मण की उपेक्षा उचित नहीं है किन्तु अतिथि ब्राह्मण सर्वथा सर्वदा सत्कार करने के योग्य है। हे वैवस्वत ? आप तो सर्वथा समर्थ हैं इसलिये आप इस ब्राह्मण के लिये अर्घ्यपाद्यादिक शीघ्र उपस्थित करें ॥८॥

एवं द्वारपालैर्वृद्धैरुक्तो मृत्युः पाद्यादिकं नचिकेतसे समुपहृत्य तमुवाच तिस्त्र इति।

तिस्त्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः। नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥९॥

हे ब्राह्मण ? आप नमन करने योग्य अतिथि हैं अतः आपके हेतु मेरा नमस्कार स्वीकार हो एवं हे ब्राह्मणदेव मेरा कल्याण हो। आप तीन रात्रि तक बिना भोजन के निवास किये हो तदर्थ प्रति रात्रि

के हिसाव से तीन वरदान ग्रहण करें ॥९॥

तिस्रो रात्रीः त्रिरात्रिसमकालपर्यन्तम् यत् यस्मात् हेतो मे मम यमस्य गृहे हे ब्रह्मन् हे विप्र ! नमस्यः नमस्कारार्हः अतिथिरभ्यागतो भूत्वा अनश्नन् अभुंजान एव अवात्सीः वासं कृतवानसि । अतः ते तुभ्यं नमस्कारयोग्यायातिथये ब्राह्मणाय नमः नमस्कारोऽस्तु । मे मम मृत्योः स्वस्ति अस्तु, भद्रमस्तु तस्मात् त्वत्पूजाद्यकरणनिमित्तः प्रत्यवायो मा भवतु-इत्येतदर्थम् अनशनेन मद्गृहे गमिताः तिस्रो रात्रीः प्रति ताः रात्रीः समुद्दिश्य त्रीन् वरान् अभीष्टार्थविशेषान् वृणीस्व याचस्व मत्सकाशात् । यद्यपि ब्राह्मणस्य ते कदाचिद् वराभीप्सा न भवेत् तथापि मय्यनुग्रहसम्पादनाय वरत्रयमवश्यं प्रार्थयस्वेतिभावः ॥९॥

इसप्रकार हितैषी वृद्ध द्वारपाल के द्वारा कथित वचन को सुनकर नचिकेता के लिये अर्घ्यपाद्यादिक लेकर नचिकेता के समीप जाकर यमराज बोले- 'तिस्रोरात्रीरित्यादि' तीन रात्रि तक जिस कारण से मेरे घर में भोजनादि के बिना नमस्करणीय अतिथि आपने निवास किया है । इसलिये नमस्कार योग्य अतिथि ब्राह्मण आपके लिये नमस्कार रहे अर्थात् आपको मैं नमस्कार करता हूँ । मुझ यमराज के लिये कल्याण हो

अर्थात् आपके पूजादि अकरण निमित्तक प्रत्यवाय न हो। हे ब्राह्मण ? आपने अनशनपूर्वक रात्रि त्रयात्मक काल को अतिक्रमित किया है अतः अभीष्ट अर्थ विशेष लक्षण तीन वर हमसे याचना कीजिये। यद्यपि आप ब्राह्मण हैं कदाचित् वर की अपेक्षा न भी हो तथापि मुझ पर अनुग्रह करने के लिये तीन वर की अवश्य याचना करें। मेरे अनुपस्थितमूलक अपराध को क्षमा करें ॥९॥

एवं यमेनाभ्यर्थितो नचिकेताः आह-शान्तसंकल्प इति-

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्यात् वीत-मन्युर्गौत्तमोमाभिमृत्यो। त्वत्प्रसृष्ट माभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥

हे मृत्युदेव ? मेरे पिता उद्दालक मेरे विषय में चिन्ता रहित हों तथा प्रसन्न-मन और मेरे विषय में क्रोध रहित हों एवं यहां से घर भेजे जाने पर मेरे प्रति वे विश्वास करें तथा प्रसन्न होकर बोलें उन तीन वरदानों में से यह प्रथम वरदान मांगता हूँ ॥१०॥

हे मृत्यो यम गौतमः एतन्नामा मत्पिता शान्त संकल्पः शान्तः निवृत्तिगतः संकल्पः मम पुत्रो यमं प्राप्य किन्नु करिष्यतीति भावनारूपः यस्य तादृश चिन्तारहितः यथा स्यात्। एवं सुमनाः प्रसन्नचित्तः मत्प्रेषणप्रयुक्तखेदरहितत्वात् स्वस्थमनाः यथा स्यात्।

मा अभि मां प्रति वीतमन्युः विगतक्रोधश्च यथा स्यात्। तथा कुरु इतिशेषः। किञ्च त्वत्प्रसृष्टम् त्वया गृहं प्रति प्रेषितं मा माम् अभि प्रति प्रतीतः सन् स एवायं मम पुत्रः यो यमगृहं प्रति मया प्रेषितः इत्येवं प्रत्यभिज्ञावान् विश्वस्तः सन्नितिभावः। वदेत् पूर्ववत् अभिभाषेत। यद्वा अभिवदेत् आशिषा युञ्ज्यात्। एतत् एतत्प्रयोजनकं त्रयाणां वराणां त्वद्दत्तानां मध्ये प्रथमं वरं वृणे प्रार्थये ॥१०॥

उपर्युक्त क्रम से यमसज द्वारा वर मांगने की प्रार्थना करने के वाद नचिकेता बोला–'**शान्तसंकल्प**' इत्यादि। हे मृत्यो यमराज ? मेरे गौतम नामक पिता शान्त संकल्प हों। शान्त है निवृत्त है संकल्प मेरा पुत्र नचिकेता यमसदन को प्राप्त करके क्या करता होगा एतादृश भावना लक्षण संकल्प है जिसका अर्थात् एतादृश चिन्तारहित जिस तरह हों, एवं **सुमनाः** प्रसन्न चित्त वाला अर्थात् यम गृह में मदीय प्रेषण प्रयुक्त जो खेद तद्रहित होने से स्वस्थ मन वाले जिस तरह से होवें। तथा मेरे प्रति क्रोध रहित वीतमन्यु जैसे हों ऐसा आप करें। और आप से गृह के प्रति प्रेषित मेरे प्रति प्रतीत अर्थात् जिस पुत्र को मैंने यमसदन के प्रति भेजा था वही मेरा पुत्र यह आया है इसप्रकार के प्रत्यभि

ज्ञावान् अर्थात् विश्वस्त होकर मेरे साथ बातचीत करें। अथवा आपके यहां से प्रतिनिवृत्त मुझे आशीर्वाद का प्रदान करें। एतादृश भवदीय वरत्रय के मध्य से मैं प्रथम वर को आपसे याचना करता हूँ ॥१०॥

एवं नचिकेतसा प्रार्थितो मृत्युः प्रत्याह-

यथा पुरस्तात् भविता प्रतीत औद्दालकि रारुणिर्मत्प्रसृष्टः। सुखं रात्रीः शयिता वीत-मन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥११॥

हे पिताभक्त नचिकेता ? अरुण के पुत्र तुम्हारा पिता उद्दालक मुझसे प्रेरित यम के जाल से छूटकर वापस आये तुमको देखते ही प्रथम के समान ही विश्वस्त होगा एवं क्रोधरहित भी हो जायगा और रात्रियों में यानी शेष जीवन में भी सुखपूर्वक सोयेंगे ॥११॥

पुरस्तात् मद्‌गृहागमनात् पूर्वस्मिन् काले यथा या दृशप्रीतिसमन्वितबुद्धिमान् त्वयि आसीत् तथैव मम गृहात् स्वगृहं प्रति गतेऽपि त्वयि प्रीतिसमन्वितबुद्धि मान् भविता भविष्यति। प्रतीतः स एवायंमदीयः प्रियः पुत्रः इति प्रत्यभिज्ञावान् सन्। औद्दालकिः उद्दालक एव औद्दालकिः। आरुणिः अरुणस्यापत्यं पुमान् अरुणपुत्रः। द्वयोर्वा अपत्यम्। अरुणस्य अपत्यम् उद्दालकस्य गोत्रापत्यं वा आरुणिः औद्दा लकिः तव पितेत्यर्थः। मत्प्रसृष्टः मया अनुग्रहीतः सन्

सुखं सुखपूर्वकं चिन्तारहितत्वात् वीतमन्युः त्वयि विगतक्रोधः सन् रात्रीः त्वद्गमनोत्तरभाविरात्रीः शयिता स्वप्ता। मृत्युमुखात् मृत्युगोचरात् प्रमुक्तं परावृत्तं त्वां ददृशिवान् दृष्टवान् सन्। मदनुग्रहवशात् प्रथमवरेण याचितं सर्वं प्रयोजनं पितुः परितोषकारकं ते सेत्स्यतीति भावः। ददृशिवान् इत्यत्र दृश् धातोः क्वसुः। द्विर्वचनं तु छान्दसत्वान्नेति बोध्यम् ॥११॥

इसप्रकार जब नचिकेता ने मृत्यु यमराज से प्रार्थना की तब यमराज नचिकेता के प्रति बोले-'**यथा पुरस्तादित्यादि**' हे नचिकेता ? पहले अर्थात् यमगृह में आने के पूर्वकाल में जिसप्रकार यादृश प्रतीति तथा प्रीतियुक्त बुद्धि युक्त आपके प्रति आपके पिता थे उसी प्रकार से मेरे यहां से पिता के घर में जाने पर भी आपके प्रति आपके पिता आपके ऊपर प्रेमयुक्त बुद्धिमान् होंगे। तथा प्रतीत अर्थात् वही मेरा पुत्र एतादृश प्रत्यभिज्ञावान् होते हुए औद्दालकि अर्थात् उद्दालक उद्दालक को ही औद्दालकि कहते हैं आरुणिः अरुण के अपत्य पुरुष अर्थात् अरुण पुत्र। अथवा दोनों का अपत्य अरुण का अपत्य तथा उद्दालक का गोत्रापत्य आरुणि औद्दालकि आपके पिता। हम यमराज से अनुग्रहीत होकर सुख पूर्वक चिन्तारहित होने से अतएव वीतमन्यु विगत क्रोध

हो करके भवदीय गमनोत्तर रात्रि में शयन करेंगे अर्थात् आपको हमारे यहां से जाने के वाद आपके पिता सुख पूर्वक क्रोधरहित होकर विश्वस्त होते हुए शयन करेंगे। मृत्यु के मुख से प्रमुक्त लौट करके गये हुए आपको देख करके अर्थात् मेरे अनुग्रह से प्रथम वर के द्वारा याचित सब प्रयोजन आपके पिता का सिद्ध होगा, यह अभिप्राय है। दर्शिवान् यहां दृश् प्रेक्षणे धातु से क्वसु प्रत्यय करके दर्शिवान् रूप होता है छान्दस होने से द्वित्व नहीं हुआ है ॥११॥

स्वर्गे लोके न भयं किञ्च नास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाऽशनाया पिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

स्वर्ग परधाम साकेतलोक में किसी प्रकार का भय नहीं रहता है उस लोक में आप भी नहीं हैं तथा कोई भी वहां पर बुढापे से ही डरता है स्वर्ग लोक में स्थित व्यक्ति भूख तथा प्यास दोनों से पार होकर शोकरहित बनकर परमानन्द-का भोग करते हैं ॥१२॥

अतः परेण मन्त्रेण द्वितीयं वरं प्रार्थयितुकामो नचिकेताः प्रार्थनाविषयाग्निविद्याफलभूतं स्वर्गमनेन मन्त्रेण प्रशंसति। स्वर्गे, इति-अत्र प्रकरणे बहुकृत्वोऽभ्यस्तः स्वर्गशब्दः स सर्वोऽपि मोक्षस्थानभूताऽप्राकृतलोकपर एव स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ती

तिमन्त्रेण मुक्तपुरुषाऽसाधारणस्य अपहतपाप्मत्वादिकस्य गुणाष्टकस्य बोधनात् 'ध्रुवसूर्यान्तरं यत्तु नियुतानि चतुर्दशं । स्वर्गलोकः स कथितः लोकसंस्थानचिन्तकैः' इतिपुराणप्रतिपादितस्वर्गलोकगतानां संसारिणामपहतपाप्मत्वादिरूपगुणाष्टकाविर्भावस्य कुत्राप्यश्रवणात् । अत्र च मन्त्रे 'न भयं किञ्चनास्तीत्यनेन अपहतपाप्मत्वम् । 'न तत्र त्वम्' इत्यनेन विमृत्युत्वम् नजरयेत्यंशेन विजरत्वम् "उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे" इत्यनेन विजिघत्सत्वमपिपासत्वञ्च प्रतिपाद्यते शोकातिग इत्यनेन विशोकत्वम् बोध्यते मोदते स्वर्गलोके इत्यनेन च मोदकारणभूते सत्यकामत्वसत्यसंकल्पत्वे प्रतिपाद्येते तस्मादत्र स्वर्गशब्दः मोक्षस्थानवाची एव मन्तव्यः । न चान्यत्र कुत्रापि स्वर्गशब्दस्य मोक्षस्थानवाचकतयादृष्टत्वात् । एतस्मिन्नर्थे अप्रसिद्धेश्चेदृशार्थकल्पना नोपपद्यते इति शङ्कनीयम् । 'अनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठन्ति के. ३४ 'तेन धीरा अपि यन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गे लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ता' (बृ-४-४-८) तस्य हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिसावृत अमुस्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामान्त्वाऽमृतः स महीपते' इत्यादिश्रुतिषु स्वर्गशब्दस्य मोक्षस्थानवाचितयाऽनेकशो दृष्टत्वात् । स्वर्गकामाधि

करणे निरतिशयप्रीतिवाचिताया एव स्वर्गशब्दस्य निर्धारणात् । पुराणप्रतिपादितलोकविशेषस्य सातिशयप्रीतिमात्रेण स्वर्गशब्दवाच्यत्वस्यौपचारिकत्वात्, उपचारमात्रेण प्रसिद्धेश्चाकिञ्चित्करत्वात् । स्वर्गे लोके मोक्षस्थाने साकेताभिधे न किञ्चनभयमस्ति भयकारणस्य पुण्यपापसम्पर्कस्य विनष्टत्वेन कस्यापि भयस्य तत्र न संभव इत्यर्थः । एतेन पुण्यप्राप्य पौराणिकस्वर्गे ईन्द्रादेरपि वृत्रासुरादिजन्यभयस्य पुराणादेव अवगम्यत्वात् न तत्र भयसामान्याभाव इति सूच्यते । तस्मात् न स प्रसिद्धोऽपि अत्र प्रकरणे ग्रहणमर्हतीति भावः । हे मृत्यो तत्र स्वर्गे मोक्षस्थाने त्वम् न न ईशिषे, तवापि तत्र प्रभावोनास्ति । न जरया बृद्धावस्थया तत्र गतोजीवो विभेति, जरामरणाद्रेः मुक्ति स्थानेऽसंभवात् । अशनाया पिपासे, अशितुमिच्छा अशनाया मुभुक्षा, पातुमिच्छा पिपासा जलादिकर्मक पानविषयिणी इच्छा ते अपि तत्र न स्तः, शोकातिगः शोकं दुःखमतिगच्छतितरतिः सः शोकातिगः शोकपारगामी स्वर्गलोके मोक्षस्थाने श्रीमद्भगवद्रामचन्द्राधिष्ठिते साकेते गतो जीवः मोदते 'यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते (छा. ८-१०) इत्यादिश्रुत्या सत्यकामत्वसत्यसं-

कल्पत्वाविर्भावबोधनात् । तेन च पितृलोकादिगतसर्व विधमोदस्य संकल्पादेव प्राप्तत्वात् सर्वथा आनन्दीभव तीत्यर्थः ॥१२॥

इसके बाद के मन्त्र से द्वितीय वर की प्रार्थना की इच्छा वाला नचिकेता प्रार्थना का विषय अग्निविद्या का फलरूप स्वर्ग का इस मन्त्र से प्रशंसा करता है- **'स्वर्गेलोके'** इत्यादि । इस प्रकरण में अनेक वार कथित जो स्वर्ग शब्द है वह सब मोक्ष स्थानभूत अप्राकृत लोक बोधक है । ऐसा कहा गया है कि-**'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलायोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम् ॥'** (जो दुःख से संमिलित न हो जिसका उत्तर काल में विनाश नहीं होता है तथा अभिलाषा अर्थात् इच्छा मात्र से जो प्राप्त हो एतादृश सुख विशेष को स्वर्ग पद वाच्य कहते हैं । अर्थात् दुःख विरोधी सुख विशेष स्वर्ग कहते हैं एतादृश सुख विशेष नित्य निरतिशय श्रीसाकेतलोक ही है । इसलिये स्वर्ग शब्द श्रीसाकेत का ही बोधक है ।) **'स्वर्गे लोके न भयं किञ्च नास्ति'** इस मन्त्र से मुक्त पुरुष असाधारण अपहत पाप्मत्वादिक गुणाष्टक का बोध होता है । सूर्य का अन्तर अर्थात् अदल बदल होने पर भी जो ध्रुव नित्य एक रूपसे व्यवस्थित रहता है उसे स्वर्गलोक

कहते हैं ऐसा लोक स्थिति को जानने वालों ने कहा है। इत्यादि पुराण प्रतिपादित स्वर्गलोक प्राप्त संसारियों को अपहत पाप्मत्वादिक गुणाष्टक का आविर्भाव कहीं श्रुत नहीं है। इस मन्त्र में-'**न भयं किञ्चनास्ति**' (कुछ भय नहीं है) इस विशेषण से अपहत पाप्मत्व का प्रतिपादन होता है '**न त्वम्**' (वहां तुम नहीं हो अर्थात् यमराज जनित भय नहीं है क्योंकि वह स्थान यमराज का गमन निषिद्ध है) इस विशेषण से मृत्यु राहित्य का प्रतिपादन किया जाता है '**न जरया**' वहां जरा वृद्धावस्था जनित भयाभावा का प्रतिपादन होता है। और '**उभेतीर्त्वा अशनापिपासे**' अशना भोजनेच्छा पिपासा पानेच्छा इन दोनों को तरण करके इस विशेषण से भी भोजनराहित्य तथा पिपासाभाव का स्वर्गलोक में प्रतिपादन होता है। '**शोकातिगः**' शोक से अतिक्रान्त हो जाता है। इस विशेषण से विशोकत्व शोकाभाव का प्रतिपादन होता है। '**मोदते स्वर्गलोके**' स्वर्गलोक में मोदप्रमोद अतिप्रसन्नता को प्राप्त करता है। इस विशेषण से मोद आनन्द विशेष लक्षण का कारणरूप सत्यकामत्व तथा सत्य संकल्पत्वरूप धर्मविशेष प्रतिपादित होता है। इसलिये प्रकृत में स्वर्गशब्द मोक्षस्थान का वाचक है ऐसा मानना चाहिये किन्तु इन्द्र यम वरुणादि

लोक का वाचक नहीं है।

एतदतिरिक्त किसी भी जगह में स्वर्ग शब्द मोक्ष स्थान का वाचक है ऐसा तो देखने में नहीं आता है तथा मोक्ष स्थान में स्वर्ग शब्द की प्रसिद्धि भी नहीं है तब स्वर्ग शब्द का मोक्ष स्थानरूप अर्थ की कल्पना तो उचित नहीं है। एतादृश शंका करना ठीक नहीं है क्योंकि 'अनन्त अतिशय श्रेष्ठ स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है' इस केन संहिता में 'वे धीर ब्रह्मज्ञानी लोक संसार बन्धन से विमुक्त हो करके इन भूरादि लोकों से उपरि स्थित स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं'। इत्यादि बृहदारण्यक में 'हिरण्मय कोश से उपमित प्रकाशातिरेक से आवृत वह स्वर्गलोक है इस स्वर्गलोक में जो कि अमृत है उसे सर्वकाम प्राप्त विद्वान् लोग प्राप्त करते हैं इत्यादि अनेक श्रुति स्मृतियों में स्वर्ग शब्द को मोक्षस्थान वाचकत्व देखने में अर्थात् तत्तत् स्थल में बहुशः मोक्षस्थान वाचकता स्वर्ग शब्द को देखने में आता है। इसलिये स्वर्ग शब्द को मोक्षस्थान वाचकता अदृष्टचर नहीं है। **'स्वर्ग कामो यजेत'** स्वर्गकामाधिकरण में निरतिशय सुख वाचकता का ही निर्णय किया गया है। और पुराणादि प्रकरण में प्रतिपादित लोक विशेष को तो अनित्य सातिशय प्रीतिमात्र से उसमें स्वर्ग पद बोध्यता **'मञ्चाः**

क्रोशन्ति' वत् औपचारिक मात्र है । अर्थात् साकेत लोक में जो स्वर्गलोक शब्द का प्रयोग है वह तो शक्ति द्वारा है और तदितर में जो स्वर्ग शब्द का प्रयोग है वह औपचारिक है । मोक्षस्थान स्वर्गलोक यह प्रतिपाद्य जो साकेतात्मक लोक है तादृश स्वर्गलोक में किसी भी प्रकार का भय नहीं है क्योंकि भय का कारण जो पुण्य पाप है उसके संपर्क के विनष्ट हो जाने से वहां किसी भी प्रकारक भय की संभावना नहीं है । कारणाभाव कार्याभाव का प्रयोजक है यह उत्सर्ग नियम है यह अर्थ है । इससे यह सूचित होता है कि पुण्य के द्वारा प्राप्त होने वाला पुराण प्रतिपादित स्वर्ग में इन्द्रादि देवता को भी वृत्तासुरादि जनित भय होता है ऐसा पुराणादिक से ही अवगत होता है । अतः उस स्वर्ग में भय का सामान्याभाव नहीं होता है किन्तु साकेतात्मक स्वर्ग में ही भय सामान्याभाव होता है, यह सूचित होता है । इसलिये इन्द्रादि लोक स्वर्गलोक शब्द से प्रसिद्ध होने पर भी प्रकृत में वह ग्रहण योग्य नहीं है । हे मृत्यु यमराज ? वह मोक्षस्थान रूप स्वर्ग लोक में आपका कोई प्रभाव नहीं है । तादृश स्वर्गलोक में प्राप्त जो जीव है उसे जरा वृद्धावस्था जनित भय नहीं होता है क्योंकि जरामरण इन सबका मोक्षस्थान में अभाव है । **'अशना**

यापिपासे' भोजन करने की जो इच्छा उसे अशनाया कहते हैं अर्थात् बुभुक्षा भूख । पान की इच्छा को पिपासा कहते हैं अर्थात् जलादिकर्मक पान विषयिणी इच्छा ये दोनों अशनापिपासा भी वहां मोक्षस्थान स्वर्ग में नहीं है । **'शोकातिगः'** शोक अर्थात् दुःख तादृश दुःख का जो अतिक्रमण है उसको शोकातिग कहते हैं शोक का पारगामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से अधिष्ठित मोक्षस्थान लक्षण स्वर्ग पद वाच्य साकेत में प्राप्त जो जीव है वह मोदित होता है । 'जिस कमनीय पदार्थ की कामना करता है वह उसे संकल्पमात्र से प्राप्त होता है तब उसकी प्राप्ति से महिमा को प्राप्त करता है' इत्यादि श्रुति से साकेत प्राप्त पुरुष को सत्य संकल्पत्व सत्य कामत्व का आविर्भाव होता है इसप्रकार प्रतिपादित होता है । उससे पितृ लोकादिगत सर्व प्रकारक आनन्द की प्राप्ति होने से सर्वथा आनन्दित होता है स्वर्गप्राप्त पुरुष ॥१२॥

सत्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गे लोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥

हे मृत्युदेव ? आप उस प्रसिद्ध मोक्ष का उपाय अग्नि विद्या को जानते हो अतः उस अग्नि विद्या को श्रद्धा वाले मेरे लिये अच्छी तरह

से कहें उस मुक्ति का हेतु अग्नि से सर्व लोक प्राप्त करनेवाले साधक श्रीरामप्राप्ति स्वरूप अमृतत्व को प्राप्त करते हैं। इस अग्नि विद्या को द्वितीय वरदान के रूपमें याचना करता हूँ ॥१३॥

अनेन मन्त्रेण स्वर्गसाधनीभूताग्निविद्यामर्थयते द्वितीयवररूपां नचिकेताः। हे मृत्यो सः पुराणादिषु सर्वज्ञत्वेन रूपेण प्रसिद्धस्त्वम्। स्वर्ग्यम् उक्तलक्षण-स्वर्गलोकप्राप्तिसाधनभूतम्। अग्निम् अग्निविद्याम्। अध्येषि स्मरसि जानासीति यावद्। तम् अग्निम् श्रद्धधानाय उक्तलक्षणमोक्षश्रद्धाविशिष्टाय मह्यम् नचिकेतसे तव शिष्यभूताय। प्रब्रूहि प्रकर्षेण वद उपदिशेत्यर्थः। प्रोपसर्गेण तथा मामग्निमुपदिश येन सम्यगहं वेत्तुं शक्नुयामिति द्योत्यते। मोक्षसाध-नत्वञ्चाग्नेरुपासनद्वारा भवतीत्यनुसन्धेयम्। कस्मान्मां तदर्थं प्रेरयसीत्याकांक्षायामाह-स्वर्गलोकाः अमृतत्वं भजन्ते। स्वर्गः साकेताख्योऽप्राकृतो देशः लोको येषांते स्वर्गलोकाः परमं पदं प्राप्ताः। ये ते अमृतत्वम् स्वस्व रूपाविर्भावलक्षणं मोक्षम्। भजन्ते प्राप्नुवन्ति। अतः तत्र श्रद्धावानहं तदुपदेशाय त्वां प्रेरये इतिभावः। ए-तत् मोक्षसाधनमग्निविज्ञानम् द्वितीयेन वरेण वृणे प्रार्थये ॥१३॥

स्वर्ग के साधनरूप अग्निविद्या के लिये नचिकेता द्वितीय वर रूप से प्रार्थना करता है इस वात को इस मन्त्र

से बतलाते हैं-'**सत्वमग्निमित्यादि**' से हे मृत्यु यमराज ? वह आप जो पुराणादिक में सर्वज्ञ रूपसे प्रसिद्ध है, वह स्वर्ग्य यथोक्त वर्णित स्वर्गलोक की प्राप्ति में साधनभूत अग्नि को अर्थात् स्वर्गसाधनीभूत अग्निविद्या का अध्ययन करते हैं अर्थात् अग्निविद्या का यथावत् ज्ञानवान् है, उस अग्नि विद्या को। श्रद्धाशील मुझे अर्थात् पूर्वोक्त वर्णित जो मोक्ष तद्विषयक श्रद्धाशील तथा विनेय योग्यं गुण विशिष्ट मुझ नचिकेता को जिसने आपकी शिष्यता को प्राप्त कर लिया है, उसे उस अग्निविद्या का समीचीन रूपसे कथन कीजिये अर्थात् उपदेश दीजिये। प्रब्रूहि में प्र उपसर्ग से यह सूचित होता है कि मोक्ष साधनभूत अग्निविद्या का उसप्रकार से उपदेश कीजिये जिससे कि मैं सरलता रूपसे उस वस्तु को जान सकूँ। इस अग्नि में जो मोक्ष साधनता है वह उपासना के द्वारा मोक्ष साधनता है ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि साक्षात् अग्नि को मोक्ष साधनता सम्भावित नहीं है यागादिवत्। अग्निविद्या के लिये हे नचिकेता ? तुम मुझे प्रेरणा क्यों देते हो ? इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये कहते हैं-'**स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते**' न्ति। स्वर्ग साकेत नामक अप्राकृत देशात्मक लोक विशेष वह है जिसे तादृश स्वर्गलोक वाले अर्थात् परमपद को प्राप्त करनेवाले जो अमृतत्व को अर्थात् स्वस्वरूप के

आविर्भाव लक्षण मोक्ष को प्राप्त करते हैं जिस अग्निविद्या के बल से। अतः उस अग्नि में श्रद्धावान् मैं तादृश अग्नि विद्या के उपदेश के लिये आपको प्रेरित करता हूँ। यह जो मोक्ष का साधन अग्नि विज्ञान है द्वितीय वर से मैं उसकी प्रार्थना करता हूँ ॥१३॥

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निन्नचिकेतः प्रजानन्। अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतन्निहितं गुहायाम् ॥१४॥

द्वितीय वर के उत्तर में यम कहते हैं-हे नचिकेता ? स्वर्ग्य-सायुज्य मुक्ति का साधन अग्निविद्या को यथार्थ रूपसे ज्ञाता मैं तुम्हें यथार्थ रूपसे वर्णन करता हूँ उसे सावधान होकर मुझसे सुनो इस विद्या के ज्ञाता होने पर अनन्त लोक-श्रीसाकेतलोक की प्राप्ति के साथ आवागमन रहित प्रतिष्ठा को भी प्राप्त करलोगे। तुम इस मोक्षसाधनरूप ज्ञान को साधकों के हृदय स्वरूप गुफा में निहित जानो ॥१४॥

एवं प्रार्थितो मृत्युः प्रतिजानाति हे नचिकेतः स्वर्ग्यं स्वर्गायहितम् स्वर्गसाधनम् अग्निम् अग्निविद्याम् प्रजानन् प्रकर्षेण सम्यग् रूपेण जानन् ज्ञातवान् अहं ते तुभ्यं प्रब्रवीमि प्रकर्षेण कथयामि स्वप्रार्थितम् उ इति यदर्थे यत् तत् मे मम सकाशात् मदुपदेशात् निबोध जानीहि एकाग्रचित्तः सन्। अनन्तलोकाप्तिम् न अन्तो यस्य सोऽनन्तः अविनाशी नित्यः स चासौ लोकः अ

नन्तलोकः साकेताभिधः तस्य आप्तिः प्राप्तिसाधनभूतम् कारणकार्योपचारात् । अथ किञ्च प्रतिष्ठाम् अत्रापि कारणे कार्योपचारात् तत्र गत्वा अपुनरावृत्तिस्वरूप-प्रतिष्ठासाधनम् एतम् मया वक्ष्यमाणम् अग्निम् अग्निविद्याम् गुहायां निहितम् अतिगुप्तम् रहस्यभूतम् त्वं विद्धि जानीहि । नायं सर्वेषां कृते सुलभः, अहं तु त्वयि प्रीतिपरीतया रहस्यभूतम् समुपदिशामि तस्मात् सावधानमनाः श्रृणुस्वेतिभावः । अथवा तत् त्वया पृष्टमग्निस्वरूपं ते तुभ्यमहं ब्रवीमि । त्वन्तु मे मदुपदेशात् तत् निबोध जानीहि । हे नचिकेतः प्रजानन् मदुपदेशात् स्वर्गसाधनमग्निं ज्ञातवान् त्वम् अनन्तलोकाप्तिम् पूर्वोक्त एवार्थः विद्धि लभस्व, अथ अनन्तरं प्रतिष्ठाम् उक्त एवार्थः च विद्धि लभस्वेत्यर्थः । विदेर्लाभार्थकस्य विवक्षणात् ॥१४॥

इसप्रकार नचिकेता से प्रार्थना करने पर यमराज प्रतिज्ञा करते हैं-'**प्र ते ब्रवीमि**' इत्यादि से । हे नचिकेता ? **स्वर्ग्य** स्वर्गहित अर्थात् स्वर्ग का साधन अग्नि को अर्थात् अग्निविद्या को समीचीन रूपसे जानने वाला मैं तुमको समीचीन रूपसे जिसकी तुमने प्रार्थना की है उसे मैं तुमसे कहता हूँ । यहां उ शब्द यत् शब्द के अर्थ में है । जिसे तुमने मुझसे पूछा है उसे तुम मेरे उपदेश से एकाग्रमन हो

करके जानो-'**अनन्तलोकाप्तिमिति**' नहीं अन्त है जिसका उसे कहते हैं अनन्त अर्थात् अविनाशी नित्य एतादृश जो लोक उसे कहते हैं अनन्तलोक अर्थात् साकेतलोक तादृश जो अनन्त साकेतलोक उसकी प्राप्ति में साधन अर्थात् कारण । यहां कारण में कार्य का उपचार है । और प्रतिष्ठा यहां भी कारण में कार्योपचार है । उस साकेतलोक में जा करके अपुनरावृत्तिरूप प्रतिष्ठा का साधन । एतत् यह हमसे वक्ष्यमाण जो अग्नि अर्थात् अग्निविद्या जो कि गुहा में निहित अतिगोप्य रहस्यरूप जो अग्निविद्या है उसे तुम जानो । हे नचिकेता ? प्रजानन् मेरे उपदेश से स्वर्ग साधन अग्नि को जान करके तुम अनन्तलोक साकेत को प्राप्त करो । और इसके वाद प्रतिष्ठा को प्राप्त करो । अनन्त लोकाप्ति तथा प्रतिष्ठा का पूर्वोक्त अर्थ ही जानना चाहिये- '**विद्धि**' जानो अर्थात् प्राप्त करो । विद्धि में लाभार्थक विद् धातु का अर्थ विवक्षित है ज्ञानार्थक विद् धातु का प्रयोग नहीं है । इसप्रकार यमराज ने नचिकेता से कहा ॥१४॥

लोकादिमग्निमुवाच तस्मै या इष्टका याव तीर्वा यथा वा । स चापि तत् प्रत्यवदद् य- थोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥१५॥

मुक्ति का साधन उस अग्निविद्या को नचिकेता के हेतु यमने कहा उसमें जो जैसी एवं जितनी इंट आदि तथा कुण्ड निर्माण आदि की

व्यवस्था होनी चाहिये वह सब बतादी उस नचिकेता ने भी जैसा सुना यथार्थ रूपसे यम को सुना दिया यथार्थ पाठ सुनकर छात्र के ऊपर प्रसन्न होकर यमने पुनः नियत रूपसे कहा ॥१५॥

इदन्तु श्रुतिवाक्यम् अस्मान् प्रतिबोधयितुम् । लोकस्य मोक्षस्थानरूपस्य साकेतस्य आप्तिम् उपासनाद्वारा प्राप्तिकारणभूतम् स्वर्ग्यमिति यावत् । तम् नचिकेतसा प्रार्थितम् अग्निम् अग्निविद्याम् । तस्मै नचिकेतसे । उवाच उपदिदेश मृत्युरित्यनुसन्धेयम् । याः यत्स्वरूपाः यादृश्यः इष्टकाः चेतव्याः उपधातव्या यावतीः संग्राह्याः । यत् संख्याकाः इष्टकाः चेतव्याः । यथा येन प्रकारेण वा चेतव्याः तत्सर्वमुवाचेत्यर्थः । यावतीरित्यत्र प्रथमाविभक्तेरपि जसः सवर्णदीर्घः छान्दसत्वादिति ध्येयम् । सं नचिकेता अपि तत् मृत्युना प्रोक्तम् । यथोक्तम् उक्तमनतिक्रम्य यथोक्तम् यथा यमेन उक्तम् तथैव प्रत्यवदद् अनुदितवांन् । अथ अनुवदनानन्तरम् शिष्यस्य ग्रहणधारणानुवचनसामर्थ्यपर्यालोचनेन तुष्टः प्रसन्नः मृत्युः वैवस्वतः पुनः भूय एव नचिकेतसम् आह उक्तवान् । प्रतिज्ञातवरत्रयादधिकमपरं वरं दातुं वक्ष्यमाणप्रकारेण। अत्र मन्त्रे इष्टकापदेन संवत्सरमध्ये प्रातःकाले सायंकाले च प्रतिदिनमनुष्ठीयमानानि अग्निहोत्रकर्माणि एव विवक्षितानि । एतेषामग्निहोत्रकर्मणां विंशत्यधिकसप्त

शतसंख्यावत्वात् अग्निविद्यायामिष्टकानामपि तावत् संख्यावत्वमेव । यथा शब्देन च ये ये मन्त्राः इष्टका प्रकाशनसमर्थाः तत्तन्मन्त्रोच्चारपूर्वकम् मृत्युना अग्नि-विद्योपदिष्टा तत्तन्मन्त्रानपि सर्वानुच्चार्य नचिकेतसा अनूदितमितिभावः । इतोऽधिकन्तु चयनप्रकरणादवगन्तव्यम् ॥१५॥

'लोकादिमग्निमित्यादि' हमलोगों को समझाने के लिये यह श्रुतिवाक्य है । लोक अर्थात् मोक्षस्थानरूप साकेत की प्राप्ति अर्थात् उपासना के द्वारा प्राप्ति में कारण स्वर्ग्य । नचिकेता से प्रार्थित उस अग्निविद्या को, उस नचिकेता के लिये मृत्यु यमराज ने उपदेश दिया । यादृश स्वरूपक जिस प्रकार के जितनी चयन करने के योग्य इष्टका है अर्थात् जितनी संख्या के चयनीय इष्टका है और जिसप्रकार से वह चयनीय है, इन सब वस्तु का कथन यमराज ने किया-**'यावतीः'** यहां प्रथमा विभक्ति के बहुवचन जस् में छान्दसत्वात् सवर्ण दीर्घ करके यह रूप है । उस नचिकेता ने भी यमराज ने जो कुछ कहा था अर्थात् यमराज ने जिस वस्तु को जिसप्रकार से कहा उस वस्तु का उसी तरह से नचिकेता ने अनुवाद करके सुना दिया । अनुवाद करने के वाद शिष्य के ग्रहण धारण और अनुवचन सामर्थ्य का विचार कर के अत्यन्त प्रसन्नचित्त

वाला वैवस्वत यमराज पुनः नचिकेता के प्रति बोले । प्रतिज्ञात जो वरत्रय उससे अधिक अन्य वर देने के लिये वक्ष्यमाण प्रकार से बोले । इस मन्त्र में इष्टका पद से एक वर्ष के मध्य में प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल में अनुष्ठीयमान जो अग्निहोत्र कर्म है उसकी विवक्षा है (इष्टका पद से) यह अग्निहोत्र सात सौ बीस संख्याक है और अग्निविद्या में भी इष्टकायें सात सौ बीस हैं–**'यावतीर्वा यथा वा'** यहां यथा शब्द से जो जो मन्त्र इष्टका के प्रकाश करने में समर्थ है तत् तत् मन्त्र के उच्चारणपूर्वक यमराज ने अग्निविद्या का उपदेश दिया । वहां तत् तत् सर्वमन्त्रों का भी उच्चारण करके नचिकेता ने अनुवाद किया, यह भाव है । इससे अधिक चयन प्रकार का जो प्रकरण है उसी प्रकरण से जान्नना चाहिये ॥१५॥

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरन्तवेहाद्य ददामि भूयः । तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥१६॥

शिष्य प्रतिभा से प्रसन्न महात्मा यम ने मचिकेता से कहा मैं तुमको एक अधिक वर देता हूँ यह अग्निविद्या अब तुम्हारे नाम से ही इस संसार में प्रसिद्ध होगी एवं इस अनेकरूप वाली रत्न जडित माला को भी ग्रहण करो ॥१६॥

प्रीयमाणः नचिकेतसः बुद्धिवैभवमवेक्ष्य सन्तुष्यन्

महात्मा महत् विपुलमुदारं मनोयस्य तादृशः उदारचेता इत्यर्थः। एवंभूतो मृत्युः तम् नचिकेतसं शिष्यम् अब्रवीत् उक्तवान्। किमित्यत्राह इह त्वयि प्रसन्नता निमित्तकम्। इहेत्यत्र सप्तम्याः निमित्तार्थकत्वाश्रयणम्। भूयः पुनरपि अद्य इदानीम् एतेन प्रसन्नताया अतिशयो द्योत्यते तत एव विलम्बं नक्षमते इत्याशयः। वरम् पूर्वप्रतिज्ञातवरत्र यापेक्षयाधिकं चतुर्थं वरं तव कृते ददामि प्रयच्छामि इति। कोऽसौ वर इत्यत्राह अयं मया समुपदिष्टः अग्निः तवैव नाम्ना नाचिकेतस इति संज्ञया भविता प्रसिद्धो भवेत् इति। अनेकरूपाम् अनेकानि नानाविधानि रूपाणि नीलपीतादीनि चाकचिक्यवन्ति यस्यां ताम् विचित्रवर्णाम्। इमां प्रत्यक्षां पुरःस्थिताम्। सृङ्काम् क्वणीप्रियमधुरशब्दवतीं रत्नमालाम् गृहाण अङ्गीकुरुष्वेत्यर्थः ॥१६॥

'**तमब्रवीदित्यादि**' नचिकेता के बुद्धि वैभव को देख करके नचिकेता के ऊपर अत्यधिक प्रसन्नचित्त महात्मा महान् विपुल उदार है मन जिसका ऐसा उदारचेता यमराज नचिकेता शिष्य के प्रति वचन बोले। प्रसन्न हो करके यमराज क्या बोले तत्राह-'**वरमित्यादि**' यहां तुमको प्रसन्नता निमित्तक '**इह**' पद में जो सप्तमी विभक्ति है वह निमित्तार्थक है। जिस लिये मैं तुम्हारा बुद्धि वैभव देखकर

के अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसलिये मैं तुमको वरत्रय से अधिक भी वर देता हूँ। भूयः पुनः अद्य अभी एतावता प्रसन्नता का अतिशय द्योतन करता है अतः इसमें विलम्ब उचित नहीं है। वरं अर्थात् पूर्व में प्रतिज्ञात वरत्रय की अपेक्षा से अधिक यह चौथा वर तुमको देता हूँ। कौन वह चौथा वर है ? इस जिज्ञासा में कहते हैं-'**तवैव नाम्नेत्यादि**' यह मेरे द्वारा समुपदिष्ट जो अग्नि है वह अग्नि तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी अर्थात् नाचिकेतस इस नाम से वह अग्नि लोक में अद्यप्रभृति प्रसिद्ध होगी-'**सृंकामनेकरूपामिति**' अनेक नाना प्रकारक रूप नील पीतादिक चाकचिक्यवान् जिसमें तादृश विचित्र वर्णवती प्रत्यक्ष पुरः स्थित इस सृङ्क्मा माला जो कि कर्णप्रिय शब्दवती रत्न निर्मित है तादृश अति विलक्षण मनुष्य से अप्राप्य माला को ग्रहण अङ्गीकार करो ॥१६॥

पुनरपि मृत्युः कर्मस्तुवन्नाह-

त्रिणाचिकेत स्त्रिभिरेत्य संधिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू। ब्रह्मजज्ञन्देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

नाचिकेत नामवाले अग्निविद्या का तीन वार साधन करनेवाला पूजा स्वाध्याय एवं दान इन तीन कृत्यों का सम्पादक एवं तीन वार अनुष्ठित अग्नि द्वारा श्रीरामजी की उपासना स्वरूप सम्बन्ध को प्राप्तकर जन्म तथा

मृत्यु को तर जाता है। सर्वेश्वर श्रीरामजी से उत्पन्न एवं ज्ञानवाला यह जीव प्रार्थना करने योग्य देव को अवगत कर श्रीरामात्मक अपने स्वरूप का अवगत कर अतिशय रूपसे जगत स्वरूप शान्ति को पाता है ॥१७॥

त्रिकर्मकृत् त्रीणि त्रिसंख्याकानि कर्माणि इज्याध्ययनदानरूपाणि करोतीति त्रिकर्मकृत् तत्र इज्या ज्योतिष्टोमादियागरूपा, अध्ययनम् गुरुमुखोच्चारितानां वेदानामनूच्चारणरूपम् 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य इति विधिश्रवणात्। दानम् बहिर्वेदिपात्रपुरुषाय वस्तुसमर्पणरूपम्। यद्वा पाकयज्ञ, हविर्यज्ञसोमयज्ञकृत् इत्यर्थः। त्रिणाचिकेतः त्रिकृत्वः नाचिकेतोऽग्निः चितो येन तादृशः त्रिभिः चितैरग्निभिः संधिम् परमात्मोपासनेन सह सम्बन्धम्। एत्य प्राप्य जन्ममृत्यू जननमरणं तरति अतिक्रामति परमात्मोपासनाऽनुष्ठितोऽयं नाचिकेतोग्निरपवर्गाय प्रभवतीत्यर्थः। द्वारभूतं परमात्मोपासनस्वरूपं निर्दिशति ब्रह्मजज्ञम् सकलजगत्कारणात् ब्रह्मणो जातः ब्रह्मजः, जानातीतिज्ञः, ब्रह्मजश्चासौज्ञश्च सः जीवः तम् ईड्यम् स्तुत्यर्हम् सर्वतो दीप्यमानम् परमात्मानं विदित्वा जीवात्मानं परमात्मात्मकमत्वेत्यर्थः। यद्वा ब्रह्मजज्ञं जीवात्मानं देवं परमात्मानं च विदित्वा शास्त्रतो गुरुपदेशतो वा विज्ञाय। निचाय्य ध्यानादिना साक्षात्कृत्य इमां स्वीयबुद्धिसन्निहितां

शान्तिम् अत्यन्तमेति संसाररूपानर्थनिवृत्त्यात्मिकाम् आत्यन्तिकीं शान्तिं प्राप्नोति । अत्र मन्त्रे ब्रह्मजज्ञं देवं विदित्वेति सामानाधिकरण्यनिर्देशात् जीवब्रह्मणोरभेदः प्रतीयते स चात्यन्तमसंभवी तस्माद् देवशब्दस्य परमात्मात्मकताश्रयणात् सामानाधिकरण्यनिर्देशः सुसंगमनीयः ॥१७॥

'**त्रिणाचिकेत**' इत्यादि । '**त्रिकर्मकृदिति**' तीन त्रित्व संख्या विशिष्ट इज्याध्ययन दान लक्षण कर्म जो करे उसे कहते हैं-**त्रिकर्मकृत्** । उसमें इज्या कहते हैं ज्योतिष्टोमादि यागविशेष को । अध्ययन कहते हैं गुरुमुख से उच्चारित जो वेदराशि उसका जो अनु उच्चारण तद्रूप अध्ययन है इस विषय में-'**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः**' यह विधिवाक्य सुना जाता है । बहिर्वेदी व्वेदी सेवा हर विहित देशकाल में सुपात्र को उद्देश्य करके जो गवादि पदार्थ का समर्पण उसे दान कहते हैं अर्थात् स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पादनरूप दान है । अथवा पाक यज्ञ हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ करनेवाला त्रिकर्मकृत् कहलाता है-'**त्रिणाचिकेतः**' इत्यादि । तीन वार चयन किया है नाचिकेत अग्नि को जिसने उसे त्रिणाचिकेत कहते हैं । '**त्रिभिरेत्यसंधिम्**' वारत्रय में चित जो अग्नि उसके द्वारा संधि परमात्मोपासन से सम्बन्ध को प्राप्त करके जन्म मृत्यु को अर्थात् जनन मरण को अतिक्रान्त करता है ।

परमात्मोपासना द्वारा अनुष्ठित जो यह नाचिकेत अग्नि वह अपवर्ग फलक होता है। मोक्ष के प्रति द्वारभूत जो परमात्मोपासन उसके स्वरूप को बतलाते हैं-**'ब्रह्मजज्ञमित्यादि'** सकल जगत् का कारण लक्षण जो ब्रह्म उस ब्रह्म से जायमान समुत्पन्न होने से ब्रह्मज ज्ञानवान् जो हो उसे ज्ञ कहते हैं। ब्रह्मज तथा जो ज्ञ हो उसे ब्रह्मजज्ञ कहते हैं अर्थात् जीव। ईड्य अर्थात् स्तुति योग्य सर्वतः प्रकाशमान परमात्मा को जो जान करके अर्थात् जीवात्मा को परमात्मात्मकत्व रूप जान करके। यद्वा ब्रह्मजज्ञ को अर्थात् जीवात्मा को तथा देव परमात्मा को जान करके शास्त्र तथा गुरूपदेश द्वारा जान करके। **'निचाय्य'** ध्यानादि द्वारा साक्षात्कार करके स्वकीय बुद्ध्या संनिहित इस शान्ति को प्राप्त करता है जो कि संसाररूप जो अनर्थ उसका निवृत्तिरूप है।

इस मन्त्र में ब्रह्मजज्ञ तथा देव को जान करके इसप्रकार से सामानाधिकरण्य के निर्देश होने से जीव तथा ब्रह्म में अभेदसी प्रतीति होती है परन्तु उभय में सर्वथा अभेद तो असंभवित है इसलिये देव शब्द परमात्मा का बोधक है तो इसप्रकार से सामानाधिकरण्य का निर्देश संगत होता है। यद्यपि जीव ब्रह्म में सर्वथा अभेद बाधित है सर्वथा भेद मानें तो एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की

प्रतिज्ञा नहीं घटेगी अतः विशेषण-विशेष्य शेष-शेषीरूपेण सामञ्जस्य किया जाता है ॥१७॥

त्रिणाचिकेतः त्रयमेतद् विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् । स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगोमोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

नचिकेता अग्निविद्या का तीन वार साधन करनेवाला परब्रह्म ब्रह्मात्मक जीवात्मा तथा अग्नि इन तीन को शास्त्र के अनुसन्धान से जानकर जो साधक पूर्व प्रकार से अवगत कर नचिकेता अग्नि का चयन करता है वह शरीर के रहते ही मृत्युपाशों को तोडकर शोक से रहित होकर स्वर्गलोक में आनन्द का अनुभव करता है ॥१८॥

यः उपासकः । एतत्त्रयम् ब्रह्मजज्ञं देवमित्यनेन प्रोक्तं ब्रह्मस्वरूपम् ब्रह्मात्मकजीवस्वरूपम् । त्रिभिरेत्य संधिमित्यनेन न्दिर्शितमग्निस्वरूपं चेति त्रित्रयम् । विदित्वा गुरूपदेशात् शास्त्राद्वा विज्ञाय । एवं विद्वान् गुरूक्तप्रकारेण शास्त्रदर्शितप्रकारेण वा अग्नि, ब्रह्म, तदात्मकजीवस्वरूपसमनुसंधानवान् । नाचिकेतम् एतन्नाम्ना यमराजवरप्रयितमग्निंचिनुते अनुतिष्ठति । सः नाचिकेतः त्रिवारं चितनाचिकेताग्निरुपासकः । पुरतः शरीरपातात् प्रागेव जीवद्दशायामेव । मृत्युपाशान् मृत्योः यमस्य पाशाः बन्धनरज्जुभूताः ये रागद्वेषादयः क्लेशपदाभिधेयाः तान् । प्रणोद्य विगमय्य दूरे-

कृत्वेत्यर्थः । शोकातिगः शोकमतिगच्छतीति शोकातिगः शोकातिक्रमं कृत्वा । स्वर्गलोके निरतिशयसुखविशिष्टे स्थाने साकेताख्ये मोक्षस्थाने इत्यर्थः । मोदते सत्यकामत्वसत्यसङ्कल्पत्वाद्याविर्भावात् ईप्सितमानन्दं लभते ॥१८॥

'**त्रिणाचिकेतः**' इत्यादि । जो उपासक इन तीन को जो-'**ब्रह्मजज्ञं देवम्**' इत्यन्त प्रकरण से ब्रह्मस्वरूप को अर्थात् ब्रह्मात्मक जीव स्वरूप को-'**त्रिभिरेत्यसंधिम्**' इस ग्रन्थ से निर्दिष्ट अग्नि स्वरूप को इस त्रितय को विदित्वा गुरु के उपदेश तथा शास्त्र द्वारा जान करके । इसप्रकार जाननेवाला गुरु दर्शित तथा शास्त्रदर्शित प्रकार से अग्नि-ब्रह्म तथा ब्रह्मात्मक जीव स्वरूप के अनुसन्धानवान् उपासक नाचिकेत अर्थात् इस नाम से यमराज से प्रथित-अग्नि का अनुष्ठान करता है । वह तीन वार नाचिकेत अग्नि का अनुष्ठान करनेवाला उपासक । शरीरपात के पहले ही अर्थात् जीवित दशा में ही । मृत्यु के पाश रागद्वेष को विनष्ट करके शोक को अतिक्रमण करके स्वर्गलोक नित्य निरतिशय सुख विशिष्ट साकेताख्य मोक्ष स्थान में मोदते सत्यकामत्व सत्यसङ्कल्पत्वादि धर्म का आविर्भाव होने से मनोभिलषित आनन्द विशेष को प्राप्त करता है ॥१८॥

यो वाऽप्येतां ब्रह्मजज्ञात्मभूतां चितिं वि

दित्वा चिनुते नाचिकेतम् । स एव भूत्वा ब्रह्म जज्ञात्मभूतः करोति तद्येन पुनर्न जायते १९

यमराज से उपदिष्ट अग्नि चयन प्रक्रिया को जो कोई भी उक्त प्रकार से श्रौतामात्मक अपने रूप को अवगत कर नचिकेता सम्बन्धी अग्नि का चयन करता है नियत रूपसे वही पुरुष ब्रह्मात्मक अपने स्वरूप को अवगम कर जिस श्रीरामजी की आराधना से पुनः जन्म नहीं लेना पडता है उस आराधना को सम्पादन करता है ॥१९॥

यः उपासकः एतां पूर्वप्रोक्ताम् चितिम् चयनम् नाचिकेताग्न्यनुष्ठानं ब्रह्मजज्ञात्मभूतां ब्रह्मजज्ञो जीवः तदात्मभूताम् तत्स्वरूपाम् । विदित्वा अनुसन्धाय । नचिकेतम् नाचिकेतसंज्ञम् । अग्निं चिनुते अनुतिष्ठति । स उपासकः एव ब्रह्मंजज्ञात्मभूतो भूत्वा चितौ ब्रह्मजज्ञस्वरूपत्वभावनायुक्तो भवन् तत् भगवदुपासनं करोति येन उपासनेन पुनः भूयो न जायते, जन्ममरणचक्रे न पतति । अयंभावः ब्रह्मात्मकस्वस्वरूपताभावनापूर्वकमेव नाचिकेताग्न्यनुष्ठानं ब्रह्मोपासनाद्वारा-मोक्षसाधनं नतु एतादृशभावनाविरहितमिति । अयं मन्त्रोयद्यपि क्लिष्टव्याख्यानतया पौनरुक्तसंकया च कैश्चित् प्रक्षिप्त्वत्वेन गणितः, अतएव न व्याख्यातश्च, कैश्चित्तु व्याख्यातः, तथापि निरुक्तदोषद्वयस्य वहुषु मन्त्रेषु संभवात् तद्वयेन तेषामपि परित्यागप्रसङ्गः स्यादित्यस्माभिः परिगृहीत एव ॥१९॥